Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2020 GISRRJ | Volume 3 | Issue 3 | ISSN : 2582-0095

संस्कृत नाट्य–स्वरूप–निरूपण

डॉ0 (श्रीमती) मधु सत्यदेव
एसोसिएट प्रोफेसर
संस्कृत विभाग,
दी0द0उ0 गोरखपुर विश्वविद्यालय
गोरखपुर,उत्तर प्रदेश, भारत

शोध आलेख सार– नाट्य या रूपक में एक प्रकार विशेष से संरचित कथा, उसका रंगमंच पर अभिनय, उसमें संगीत आदि का योग, उससे प्रेक्षकों को रसानुभूति, विनोद, शांति और उपदेश–यह सब होना आवश्यक है। इनमें से किसी एक पक्ष के भी न्यून रह जाने पर वह भारतीय नाट्य–शास्त्र के अनुसार नाट्य का आदर्श नहीं ठहरता, किसी नये अध्यवसायी का प्रयोग–मात्र रह जाता है।

मुख्य शब्द– संस्कृत, नाट्य, स्वरूप, रसानुभूति, प्रेक्षक, अभिनवगुप्त।

परम माहेश्वर अभिनवगुप्त ने नाट्य को लौकिक पदार्थ से भिन्न माना है। लौकिक पदार्थों की प्रतीति के दस प्रकार है–अनुकरण, प्रतिविम्ब, चित्र, सादृश्य, आरोप, अध्यवसाय, उत्प्रेक्षा, स्वप्न, माया और इन्द्रजाल। नाट्य की प्रतीति इन लौकिक प्रतीतियों से भिन्न है। नाट्य में जो नट, राम आदि का रूप धारण करके अभिनय करता है, उसमें नाटक देखते समय सामाजिक को यह अनुभव नहीं होता कि यह राम का अनुकरण है, या प्रतिबिम्ब है, या राम का चित्र देख रहा है, या राम के व्यक्ति के आरोप या अध्यवसाय या माया या स्वप्न या इन्द्रजाल आदि को देख रहा है। यदि इस प्रकार का अनुभव हो, तो उसे रसास्वाद नहीं होगा। इसलिए जितने प्रकार की लौकिक प्रतीतियाँ हो सकती हैं, नाट्य के नाम आदि का ज्ञान उन सबसे भिन्न प्रकार का होता है।[1]

लौकिक ज्ञान के पाँच प्रकार है – यथार्थ ज्ञान, मिथ्या ज्ञान, संशय, अनवधारण और अनध्यवसाय।[2] नाट्य का ज्ञान भी इन लौकिक ज्ञान–प्रकारों से भिन्न है। उसका ज्ञान साक्षात्कारात्मक होता है। अतः नाट्य–आस्वाद–रूप साक्षात्कारात्मक ज्ञान से ग्राह्य रसात्मक अलौकिक वस्तु है।

अभिनवगुप्त ने किसी अन्य आचार्य का मत भी उद्धृत किया है। उसके अनुसार नटनीय अनुकरण दशरूपक ही नाट्य है–''अन्ये तु नटनीयमनुकरणं दशरूपकमेव नाट्यम्।''[3]

पितामह ब्रह्मा से महेन्द्रादि देवों ने एक बार ऐसे क्रीडनीयक की इच्छा की थी, जो दृश्य और श्रव्य (श्राव्य भी) हो–''क्रीडनीयकमिच्छामो दृश्यं श्रव्यं च यद्भवेत्।''[4] अभिनवगुप्त के अनुसार दृश्य होने के कारण यह ह्रद्य (ह्रदय को भाने वाला) है और श्रव्य या श्राव्य होने के कारण व्युत्पत्तिप्रद। इस प्रकार नाट्य से प्रीति भी मिलती है और व्युत्पत्ति भी। इन्द्रादि देवों ने अपनी प्रसन्नता के लिए तो नाट्य की इच्छा की ही होगी, किन्तु इससे देव और मानुषसर्ग भी प्रसन्न हुआ होगा। जम्बूद्वीप या लोकपाल–प्रतिष्ठित वहाँ के 'लोक' यज्ञादि द्वारा स्वधर्म पर अवस्थित रहने के कारण स्वर्ग भी पहुँचते थे, अतः देव–मानुष–संमत क्रीडनक की आकांक्षा देवों ने की होगी। यह नाट्य मानुषलोक–संगत तो था ही, स्वर्ग में भी जब तक मानुष–सुलभ राजस धर्म के अभिसम्बन्ध से चित्रित यागादि के योग द्वारा देवों के ह्रदय भी 'सरस' हो जाते थे, सो देव भी ऐसे 'क्रीडनीयक' का अभिलाष करते थे।[5]

इस क्रीडनीयक की इच्छा हुई थी त्रेता युग में। अभिनवगुप्त ने बताया है–''सर्वेषु त्रेतायुगेषु नाट्य–प्रवृत्ति''[6] – सभी मन्वन्तरों के त्रेतायुगों में नाट्य–प्रवृत्ति होती है। जम्बूद्वीप है कर्मभूमि–स्थान, इसमें 'लोक' सुखी भी रहता है, दुःखी भी। तद्विषयक क्रीडनीयक की ही इच्छा की गयी। क्रीडनीयक, जिससे चित्त का विक्षेप हो, जिससे इधर–उधर भागते चित्त का मार्ग–नियोजन हो–जो क्रीडन के निमित्त हितकारक हो। यह क्रीडनीयक सुख–दुःख में ही संभव है। जहाँ एकान्त सुख हो, वहाँ क्रीड़ा से क्या लेना–देना ? इसी प्रकार एकान्त दुःखपूर्ण काल अथवा देश में क्रीडा संभव नहीं है, क्रीडनीयक सुख–दुःख–दोनों में ही होता है–हो पाता है। कृतयुग में एकान्त सुख होता है, और कलि प्रांत में इलावृत्तदिनिवासी जनों के बीच या नरक में दुःख–ही–दुःख, सो दोनों में क्रीडा की उत्पत्ति हो ही नहीं सकती–''कृतुयगे कलिप्रान्ते वा इलावृत्ता–विनिवासिनि जने नारके वा न क्रीडोपपत्तिः।''[7] भावार्थ यह है कि –''न सत्त्वप्रधान दशा में नाट्य की उत्पत्ति होती है, न और तमःस्थिति में। राजस्–अवस्था में सुखदुःखात्मिका प्रवृत्ति रहती है। यही सुख–दुःख से समन्वित युग त्रेता है, जिसमें क्रीडनीयक की पूरी–पूरी सम्भावनाएँ रहती है। देव–अर्थात् शास्त्राधिकृत जन–भी नाट्य में सुख प्राप्त करते हैं और सामान्य जन भी, जो वेद शास्त्रोपयोग्य नहीं है। नाट्य सबको सुख देता है,···यह सार्ववर्णिक है···अधिकारी और अनधिकारी सुकुमारों को भी व्युत्पत्ति प्रदान करने वाला–'अधिकृतानामनधिकृतानापि सुकुमाराणं व्युत्पत्तिदायी।'[8] इसी कारण नाट्य वही है, जो धर्म, यश, उपदेश का प्रदाता, वेदविधि के साक्षात्करण में समर्थ (संग्रह), भावी लोक के सब कर्मों का अनुदर्शक, सब शास्त्रों के अर्थ से सम्पन्न, सब शिल्पों का प्रवर्तक, स–इतिहास पंचम वेद हो।[9] नाट्य की उत्पत्ति के मूल में अनुकरण हो सकता है, पर अनुकृति–मात्र नाट्य नहीं है। वह केवल पुरुषार्थी के उपाय का संकेतक नहीं है, शास्त्र–अर्थ की व्याख्या तथा गीत, नृत्त, वाद्य से युक्त समस्त शिल्पों का प्रवर्त्तक और एक ही यत्न से समस्त वस्तुओं की सिद्धि करने वाला है–''न केवलं प्रधानपुरुषार्थोपायदर्शकं यावत्सर्वेषां शास्त्राणां कलाप्रधानानां येऽर्था

गीतनृत्तवाद्यादयस्तैः सम्पन्नं युक्तम् तथा सर्वाणि शिल्पानि चित्रपुस्तादीनि प्रवर्तयति स्वोपयोगत्वे नाक्षिपतीत्येवमेकेन यत्नेन समस्तवस्तुनिसिद्धिर्यतो भवति तन्नाट्यमित्युक्तं भवति।''[10]

इस प्रकार नाट्यादि रूपक–स्वरूप गीत–वाद्य–प्रधान, अभिनय से परिपुष्ट, रसचर्वणात्मक पराप्रीति से पूर्ण ही नाट्य होता है–तदेवं नाट्यादि रूपकोपक्रमे गीतातोद्यत्राणाभिनयवर्गपरिपुष्ट–रसचर्वणात्मकं परप्रीतिमयमेव नाट्यम्।''[11] जिसमें ये गुण नहीं है, वह नाट्य संज्ञा का अधिकारी नहीं है। इन्हीं गुणों से यह दुःख, श्रम, शोक से पीड़ित जनों को विश्रान्ति देने वाला हो पाता है। समस्त ज्ञान, समस्त शिल्प, सब विद्या, सम्पूर्ण कला, ज्ञान और कला की सम्पूर्ण योजना–रूप सब कर्म इस नाट्य में आ जाते हैं। यह सप्तद्वीपानुकरण है। देव, राक्षस, राजा, उनके कुटुम्बी, ब्रह्मर्षि–सबका वृत्तान्त इसमें होता है। सुख–दुःख समन्वित लोकस्वरूप का अभिनय ही नाट्य है।[12]

धनंजय से नाट्य को अवस्था का अनुकरण कहा है–''अवस्थानुकृतिनट्यिम्''[13] पर इसका तात्पर्य यह नहीं है कि नाट्य वानरी कला है,[14] काव्य में वर्णित नायकों की जो धीरोदात्तदि अवस्थाएँ होती है, उनका चतुर्विध अभिनय करके तादात्म्य की उत्पत्ति कर देना ही अनुकृति है, उसे ही नाट्य कहते है–''काव्योपनिबद्धधीरोदात्ताद्यवस्थानुकारश्चतुर्विधभिनयेन तादात्म्योपत्तिनट्यिम्''[15] अनृकृति का अर्थ है; अनुकार्य से अनुकर्त्ता की तादात्म्य–स्थिति। विद्यानाथ ने इसी की पुष्टि करते हुए कहा है कि सात्त्विकआंगिक आदि चतुर्विध अभिनय द्वारा धीरोदात्तादि नायकों की अवस्थानुकृति रसाश्रय नाट्य है–चतुर्विधैरभिनयैः सात्त्विकांगिकपूर्वकः। धीरोदात्ताद्यवस्थानुकृतिर्नाट्यं रसाश्रयम्।।[16] यह दृश्य होता है, इसी कारण यह रूप है–''रूपं दृश्यतयोच्यते।''[17] और नट में रामादि की अवस्था का इसमें आरोप कर लिया जाता है, इसलिए यह रूपक है–''रूपकं तत्समारोपात्''[18] अथवा विश्वनाथ के अनुसार, ''तद्रूपारोपात्तु रूपकम्।''[19] शारदातनय ने भी 'भावप्रकाशन'[20] में ऐसा ही कहा है–''समादितादात्म्यापत्तिर्नटे वा नाट्यमुच्यते। रूपक तद्भवेद्रूप दृश्यत्वात् प्रेक्षकैरिदम्।। रूपकत्वं तदारोपात् कमलारोपवन्मुखे।।'' प्रेक्षक इसे देख सकते हैं, इसलिए यह रूप है, और रूपक यह आरोप के कारण कहा जाता है। जैसे सुख में कमल का आरोप किया जाता है, वैसे ही इसमें अनुकार्य राम–सीतादि का अनुकर्त्ता–अभिनेता–अभिनेत्री में।

धनिक के अनुसार–नाट्य, रूप, रूपक–एक ही वस्तु के तीन नाम है। ये वैसे ही प्रवृत्ति के कारण व्यवहार में आते हैं, जैसे इन्द्र, पुरंदर, शुक्र, ये तीनों नाम एक ही देवता की प्रवृत्ति के निमित्त से व्यवहार में आते है।[21] विश्वनाथ ने नाट्य की दृश्यकाव्य कहा है।[22] पर नाट्य दृश्य–मात्र नहीं है, देखा भी जाता है, सुना भी। नाटकादि बहुभाषाओं में निबद्ध होते हैं और विचित्र होते हैं, क्योंकि उनमें नाना संधि, संध्यंग और अभिनय का योग

होता है–''नाटकाद्यन्यत् काव्यं तद्बहुभाषं विचित्रम्।''[23] जिस काव्य में ये सब गुण आ जाएंगे, वह अभिनय–काव्य बन जाएगा–दृश्य–श्रव्य–देखा भी जाएगा और सुना भी जाएगा।

वामन ने रूपक को प्रबन्धकाव्यों में श्रेष्ठ[24] बताते हुए कहा है कि यह चित्रपट की भांति भाषा–भेदादि रूप 'विशेषों' का साकल्य (समाहार) कर लेता हैं, इससे यह चित्र है, कथा–आख्यायिकादि की कल्पना दशरूपक से ही होती है–''तद्धि चित्र चित्रपटवद्विशेषसाकल्यात्। तद्दशरूपकं हि यस्मात् चित्र चित्रपटवत् विशेषाणां साकल्यात्। ततोऽन्यभेदक्लृप्तिः ततौ दशरूपकात् अन्येषां भेदानां क्लृप्तिः कल्पनमिति। दशरूपकस्य एवं हि इदं सर्व विलसितं, यच्च कयाऽऽख्यायिके महाकाव्यम् इति।''[25]

रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाट्य को 'अभिनेय काव्य' कहा है। अभिनेय इसलिए कि यह चतुर्विध अभिनयों से प्रत्यक्ष होने योग्य हो जाता है।[26] इसकी रचना सरल नहीं है। कथादि के अलंकार–मृदुपंथ में सुगमता से संचरण हो सकता है, किन्तु रस–लहरियों से संकुल होने के कारण नाट्य का पंथ दुःसंचार है। जो गीत, वाद्य और नृत्त के जानकार नहीं है और जो लोक की स्थिति को नहीं जानते, वे न तो नाट्य–प्रबन्ध का अभिनय कर सकते हैं, और न उसकी रचना। वही कवि है, उसी के काव्य से मर्त्य भी सुधांध देव बन जाते है, जिसके नाट्य में रसकल्लोलों में चक्कर खाती हुई भारती नृत्य करती है।[27]

नाटकादि का क्योंकि अभिनय होता है–वे रूपित होते है अतः उन्हें 'रूप' भी कहा जाता है–''रूपयन्ते अभिनीयन्ते इति रूपाणि नाटकादीनि।''[28]

भरत ने इस समस्त त्रिलोकी के भावानुकीर्तन को नाट्य कहा है–''त्रैलोक्यस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्''[29] किन्तु अभिनवगुप्त के अनुसार इस भावानुकीर्तन को 'अनुकार' समझने की भ्रांति नहीं होनी चाहिए। यह अनुकीर्तन, जिसका नाम नाट्य है, अनुव्यवसाय–विशेष है। इसे देखकर ऐसी बुद्धि नहीं होती कि भांड राजपुत्र की या किसी अन्य की नकल कर रहा है। भांड के द्वारा किया गया अनुकरण हासमात्र का फल देता है–उसे विकरण कहते है–''तदिदमनुकीर्तनमनुव्यवसायविशेषो नाट्यापरपर्यायः। नानुकार इति भ्रमितव्यम्। अनेन भण्डेन राजपुत्रस्यान्यस्य वानुकृतेऽन्यादिबुद्धेरभावात्। तद्धि विकरणमिति प्रसिद्धं हासमात्रफलं मध्यस्थानाम्।''[30] भरतमुनि ने ऐसी ही परचेष्टानुकृति को हास की जननी माना है–''परचेष्टानुकरणाद्हासमुपजायते।''[31] नाट्य अनुव्यवसायात्मक, अनुकीर्तन–रूप विकल्प–प्रतीति से रहित है; उसका ग्रहण अनुव्यवसायात्मक निर्विकल्प प्रतीत–अर्थात् साधारणीकरण व्यापार के पश्चात् होने वाले अनुव्यवसायात्मक ज्ञान द्वारा होता है–''तस्मादनुव्यवसायात्मकं कीर्तनरूषितविकल्पसंवेदनं है–यह नकल से भिन्न है।

अन्य काव्यों से नाट्य की विवशेषता प्रतिपादित करते हुए अभिनवगुप्त ने बताया है कि गुण और अलंकारों से मनोहर शब्दार्थशरीरी लोकोत्तर–रस–प्राण नाट्यातिरिक्त काव्य में हृदय के तन्मयीभाव के कारण चित्तवृत्ति निमग्न तो हो जाती है, किन्तु उसमें प्रतयक्ष–सदृश साक्षात्कारात्मक प्रतीति नहीं हो पाती। नाट्य–प्रेक्षण करते समय ''आज मुझे कुछ पारमार्थिक लाभ होगा'' ऐसे अभिप्राय और संस्कार के अभाव के कारण, 'सम्पूर्ण परिषद् के लिए समान रूप से आनन्दप्रद तथा अंत तक सरस होने से लोकोत्तर वस्तु को देखने–सुनने का अवसर प्राप्त होगा', इस अभिप्राय तथा संस्कार से उसके योग्य गीत–नृत्य, वाद्य आदि की चर्वणा आदि के द्वारा सांसारिक भाव को भूलकर, स्वच्छ दर्पण के समान निर्मल हृदय हो, सूच्यादि अभिनय को देखने से उत्पन्न प्रमोद–शोकादि में तन्मय होकर पाठ्य–श्रवण तथा पात्रों के प्रवेश के कारण देश–काल के विशेष आवेश से अनार्लिगित तथा सम्यक् मिथ्या, संशय, संभावना आदि ज्ञान द्वारा विज्ञेयता के सम्बन्ध से रहित (अर्थात् साधारणीकृत तथा अलौकिक) राम–रावणादि–विषयक अध्यवसाय (ज्ञान) के हाने पर एवं उस प्रकार के संस्कार की अनुवृत्ति के कारणभूत तत्सहचर हृदय को भानेवाले गीत, वाद्य, प्रमदा आदि के अनुभवजन्य संस्कार से सूचित, तदनुगत, उक्त–रूप राम के अध्यवसाय और संस्कार का ग्रहण कर, चमत्कारयुक्त उन रामादि पात्रों के चरित के मध्य आत्मरूप–मति होकर–अर्थात् उनमें तादात्म्य का अनुभव कर–अपने माध्यम से समस्त विश्व को वैसा ही देखते हुए प्रत्येक सामाजिक देश–काल आदि के विशेषणों के परामर्श (संबंध) के बिना ही तत्तद्विषयक ज्ञान प्राप्त कर रसास्वादन करता है तथा शुभ का ग्रहण एवं अशुभ का परित्याग करने में समर्थ होता है।[32] इस प्रकार जो नाट्य है, वह अपने प्रेक्षकों को रोगादि के दुःख, मार्गादि के क्लेश से उत्पन्न श्रम, बंधु–मरणादि के कारण उत्पन्न शोक तथा खिन्नता से मुक्त कर उनके हृदय को विश्रांति प्रदान करता है तथा दुःख–प्रसार का विघातक होता है। जो दुःखी नहीं हैं, जिनके जीवन का अधिक भाग सुख में ही बीतता है, उन राजपुत्रादि को लोकवृत्त में धर्माचरण करने का उपदेश देता है। परन्तु यह उपदेश गुरू–उपदेश के समान नहीं होता, बुद्धि'विवर्धन कर उनकी प्रतिभा को ही वैसी बना देता है। जिसमें समस्त ज्ञान, समस्त शिल्प, समग्र विधाएँ और समूची कला, योग और कर्म का समावेश हो सके, वह नाट्य है।[33]

वह इसी अर्थ में 'सप्तद्वीपानुकरण' है–अनुकृति, अनुकीर्तन तथा अनुभावन है। कालिदास के शब्दों में, जिसमें त्रैगुण्योद्भव नानारस लोकचरित का दर्शन हो, वह नाट्य है, ऐसा ही नाट्य भिन्न–भिन्न रूचि रखने वाले अनेक जनों को प्रसन्न करने का एक साधन है–''त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते। नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्''[34]

नाट्य या रूपक न केवल कवि–कर्म है, न गीत–वाद्य ही है, न सामान्य कथा–कहानी मात्र और न केवल अनुकरण है–वह केवल रंगमंच की यांत्रिक क्रिया भी नहीं है। वह एक समन्वित कला (कंपोजिट आर्ट) है। उसके मूल में चाहे जो रहा हो, पर भारतीय नाट्य जब शास्त्र–परिधि में समाया, तो वह कोई एक वस्तु नहीं था। पं0 सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार किसी प्रसिद्ध या कल्पित कथा के आधार पर नाट्यकार द्वारा रचित रचना के अनुसार नाट्य–प्रयोक्ता द्वारा सिखलाए हुए नट, जब रंगपीठ पर अभिनय तथा संगीतादि के द्वारा रस उत्पन्न करके

प्रेक्षकों का विनोद करते है, तथा उन्हें उपदेश और मनःशान्ति प्रदान करते हैं, तब उस प्रयोग को नाटक या रूपक कहते है।[35]

अतएवं ''नाटक शब्द का अर्थ है : नट लोगों की क्रिया। नट कहते हैं विद्या के प्रभाव से अपने वा किसी वस्तु के स्वरूप के फेर वा स्वयं दृष्टिरोचन के अर्थ फिराना। नाटक में पाठगण अपना स्वरूप परिवर्तन करके राजादिक का स्वरूप धारण करते है वा वेषविन्यास के पश्चात् रंगभूमि में स्वकार्य–साधन के हेतु फिरते हैं। दृश्यकाव्य वह है जो कवि की वाणी को उसके हृदयगत आशय और हाव–भाव–सहित प्रत्यक्ष दिखला दे। काव्य को दर्शकों के चित्त पर खचित कर देना ही दृश्यकाव्यत्व है। दृश्यकाव्य की संज्ञा ही रूपक है। रूपकों में नाटक ही सबसे मुख्य है। इससे रूपकमात्र को नाटक कहते हैं। इस विधा का नाम 'कुशीलवशास्त्र' भी है। प्राचीन समय में अभिनय नाट्य, नृत्य, नृत्त, तांडव और लास्य–इन पांच भेदों में बाँटा हुआ था। इसमें नृत्य भावसहित नाचने को, नृत्त्व केवल नाचने को और तांडव और लास्य भी एक प्रकार के नाचने को ही कहते थे। इससे केवल नाटकों में नाटक आदि का समावेश होगा, शेष चारों नाचने वाले पर छोड़ दिए जायंगे।''[36]

इस प्रकार नाट्य या रूपक में एक प्रकार विशेष से संरचित कथा, उसका रंगमंच पर अभिनय, उसमें संगीत आदि का योग, उससे प्रेक्षकों को रसानुभूति, विनोद, शांति और उपदेश–यह सब होना आवश्यक है। इनमें से किसी एक पक्ष के भी न्यून रह जाने पर वह भारतीय नाट्य–शास्त्र के अनुसार नाट्य का आदर्श नहीं ठहरता, किसी नये अध्यवसायी का प्रयोग–मात्र रह जाता है।

सन्दर्भः–

1. नाट्य नाम लौकिकपदार्थव्यत्तिरिक्ति तदनुकारप्रतिबिम्बालेख्यसादृश्यारोपाध्यवसायोत्प्रेक्षास्वप्नमायेन्द्रजालादिविलक्षणं तदग्राहकस्य सम्यगानभ्रान्तिसंशयानवधारणाध्यवसायविज्ञान भिन्नवृत्तान्तास्वादनरूपसंवेदनसंवेद्यं वस्तु रसस्वभावम्।... ना0शा0 1/1 पर अभिनवभारती।
2. तदेव पर आचार्य विश्वेश्वर का संजीवन भाष्य।
3. पूर्णतया अपरिचित वस्तु को प्रथम बार देखने पर उसके विषय में अनिश्चय अनध्यवसाय है तथा सुपरिचित वस्तु को देखने पर भी उसके पूर्णरूप से संमुख न आने पर तद्विषयक अनिर्णय अनवधारण।
4. ना0शा0 1/1 पर अभिनवभारती।
5. वही, 1/11 ।
6. वही, 1/11 पर अभिनवभारती।
7. वही, 1/8–9 पर अभिनवभारती
8. तदैव।
9. ना0शा0 1/12 पर अ0भा0।
10. धर्ममर्थ्य यशस्यं च सोपदेश्यं ससंग्रहम्। भविष्यतश्च लोकस्य सर्व कर्मानुदेर्शकम्।।
    सर्वशास्त्रार्थसम्पन्न सवशिल्पप्रवर्तकम्। नाट्याख्यं पंचमं वेदं सेतिहासं करोभ्यहम्।।
    – ना0शा0 1/14–15

11. ना0शा0 1/14 पर अ0भा0।
12. वही, 1/17 पर अ0भा0 ।
13. वही, 1/114, 116–119 ।
14. दशरूपक 1/7 द्रष्टव्य भाव–प्रकाशन, 7/1 ।
15. ''कला न वानरीवृत्ति का प्रतिरूप है और न वर्णसंकरी संतान है।''–सद्गुरुशरण अवस्थी (मंझली रानी, पृ0–31)
16. दशरूपक 1/7 पर धनिक को वृत्ति।
17. प्रतापरूद्रीय नाट्यप्रकरण।
18. दशरूपक 1/7 ।
19. तदैव।
20. साहित्यदर्पण 6/2 ।
21. भावप्रकाशन 7/2–3 ।
22. दशरूपक 1/7 का अवलोक।
23. दृश्यश्रव्यत्वभेदेन पुनः काव्यं द्विधा मतम्। दृश्य तत्राभिनेयम्। – साहित्यदर्पण, 6/7 ।
24. रूद्रट : काव्यालंकार, 16/36 ।
25. काव्यादर्श, 1/37 ।
26. तदैव, 1/31 ।
27. सन्दर्भेष दशरूपकं श्रेयः। सन्दर्भेषु प्रबन्धेषु दशरूपकं नाटकादि श्रेयः। – काव्यालंकार, सूत्रवृत्ति, 1/30 ।
28. काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, 1/31–32 ।
29. नाट्यदर्पण, 1/2 तथा वृत्ति।
30. वही, 1/विवरण, श्लोक–3–5/ ।
31. तदैव 1/1 की वृत्ति।
32. ना0शा0 1/107 ।
33. ना0शा0 तदैव पर अ0भा0 ।
34. ना0शा0 7/10 ।
35. ना0शा0 1/107 पर अ0भा0 ।
36. ना0शा0 1/114–117 तथा अ0भा0 ।